# नवगीत : मूल्यांकन के प्रतिमान

**2**

**डॉ० देवेन्द्र कुमार***

स्वतन्त्रता के बाद गीत में नवीनता का जो उभार आया था उसे नवगीत नाम दिया गया था। राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित गीतांगिनी (1958) से नवगीत का जो प्रवाह चल पड़ा उसमें वीरेन्द्र आस्तिक, रामदरश मिश्र, उमाकान्त मालवीय, शम्भूनाथ सिंह, रमेश रंजक, रवीन्द्र भ्रमर, नईम, ठाकुरप्रसाद सिंह, विद्यानन्दन राजीव, अशोक शर्मा, विष्णु विराट, कैलाष गौतम आदि का अविस्मरणीय योगदान है।

नवगीत के मूल्यांकन में बच्चन और नीरज के गीतों की समीक्षा के औजार अपर्याप्त से लगते हैं। नवगीतकारों और नवगीत के समीक्षकों ने कुछ नये प्रतिमानों को आधार बनाकर नवगीत के मूल्यांकन का प्रयास किया है। गम्भीरता से विवेचन करने पर निम्नलिखित आधारों पर नवगीत के मूल्यांकन का प्रयास दिखाई देता है–

1. लोक–संपशिक्त
2. ताजे टटके प्रकृति–बिम्ब
3. सकारात्मक परिवर्तन की व्यंजना
4. लय और छन्द की अपरिहार्यता
5. भाषा की सचेत और सार्थक बनावट
6. नई कथन–पद्धतियों का अन्वेषण

डॉ० ललित शुक्ल ने गीतों की नवीन भंगिमा के पीछे प्रयोगवाद को प्रेरक माना है। केदारनाथ सिंह के गीत की समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा है–

'इस गीत की भाषा, भावों की अभिव्यक्ति की शैली और ध्वनि–बोध पुरानी शैली से बदला हुआ है। यहाँ न तो प्रसाद के गीतों की भाव–गझिनता है, न महादेवी वर्मा के गीतों की मादकता है न नवीन की तान है और न बच्चन का सहज भाव है। यह एक अलग प्रयास है जो प्रयोगवाद युग की देन है।'[1]

वस्तुतः प्रयोगवाद छन्द का बहिष्कार करने वाला आन्दोलन था इसलिए वहाँ गीत विधा को प्रोत्साहन नहीं मिला। प्रयोग में एक तरह की बौद्धिकता थी, नवगीत ने उसका विरोध किया। यह आस्वाभाविक नहीं है कि आलोचकों में नवगीत के मूल्यांकन में लोक धर्मिता या लोकजीवन से जुड़ाव को ज्यादा महत्व दिया है। हालांकि नवगीत की विषयगत वस्तु बहुत व्यापक है, फिर भी लोक–जीवन से जुड़े हुए लोकगीत विशेष रूप से सराहे गये हैं। चाहे अश्वघोष का 'अम्मा का खत' हो या माहेश्वर तिवारी का प्रसिद्ध गीत 'धूप में जब भी जले हैं पाँव' हो इन सब में लोक–संपशक्ति सघन है। डॉ० हरिमोहन ने सही लिखा है–

* *प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, चौ० जी०एस० गर्ल्स डिग्री कॉलिज, बान्दूखेड़ी, (सहारनपुर)*

..... ग्राम्य जीवन का समूचा परिवेश परिवर्तित चेतना और भावबोध नवगीत को पूर्णता देता है, उसकी पूरी पहचान बनाता है। नयी कविता जब लोक चेतना से दूर होने लगी तो इसी ग्राम्य चेतना ने उसे स्पन्दन दिया। तब नवगीत का भी जो रूप उदित हुआ था तो उसके रगरेशों में, वस्तु और शिल्प में ग्राम्य चेतना का प्राणवान रस प्रवाहमान था।'[2]

डॉ० रमाकान्त शर्मा जैसे आलोचकों ने कविता के मूल्यांकन के लिए 'लोक धर्मिता को' महत्वपूर्ण प्रतिमान माना है – उन्होंने मुक्तिबोध द्वारा प्रतिपादित ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान को लोक से जोड़ने की बात कही है। डॉ० रमाकान्त शर्मा के शब्दों में – 'सर्जनात्मक ज्ञानात्मक लोक संवेदना ही कविता की असली जमीन है।'[3]

नवगीत में भी नवगीत की असली जमीन भी यही लोक संवेदना है। कुछ आलोचकों ने इसी लोक– संपशक्ति को जनधर्मिता की संज्ञा दी है। डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ ने स्पष्ट किया है कि नवगीतकारों की लोक–संपशक्ति केवल पर्वों और त्योहारों तक सीमित नहीं है। उन्हीं के शब्दों में–

'अश्वघोष, रमेश रंजक, गुलाब सिंह, विद्यानन्दन राजीव आदि ने बहुत से गीतों में भूख, श्रम और मजदूरी का समीकरण हल करने में असफल जनसमुदाय का जीवन उभरा है। रमेश रंजक ने ग्रामीण अंचल की दुर्दशा को वही की भाषा और कथन–पद्धति के माध्यम से बहुत प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति दी है। 'इतिहास दुबारा लिखो' में संग्रहित लोकगीतनुमा गीत अपने ढंग के अकेले हैं। कभी प्राकृतिक आपदायें तो कभी व्यवस्था की अव्यवस्था, गाँव के श्रम–जीवियों का जीवन दूभर कर देती है। होली दिवाली आदि त्यौहार उनके लिए कुछ माइने नहीं रखते।'[4]

लोक–संपशक्ति का स्वाभाविक परिणाम प्रकृति से निकटता है। लेकिन उन प्रकृति चित्रों को अधिक प्रशंसा मिली है जो ताजे टटके बिम्बों से समृद्ध है। आलोचकों ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि आधुनिक महानगरीय दृष्टि से प्रकृति को न देखकर लोकजीवन की प्रकृति का चित्रण नवगीतों की अपनी विशेषता है। ठाकुर–प्रसाद सिंह, नईम और रवीन्द्र भ्रमर के प्रकृति चित्रों को इसी आधार पर सराहना मिली है। प्रोफेसर देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अगम जल में बसी हुई सोन मछली, कस्तूरी का फूल हेरती हुई बड़ी–बड़ी हिरना आँखें, आग में नहाये टेसू बन, सोन बेल के मुखड़े पर चमकती हुई चाँदनी की धूप आदि बिम्बों को लक्ष्य करके डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के गीतों के सन्दर्भ में लिखा है– 'इन प्राकृतिक बिम्बों की सबसे बड़ी विशेषता तो है कि ये किसी रागात्मक–संवेदना से वलयित होकर ही प्रयुक्त हुए हैं, कोरे प्रकृति चित्रण के उपादान बनकर नहीं।'[5]

आलोचकों ने अपेक्षा की है कि गीत में उसके विजन या उद्देश्य का सीधा सपाट बयान नहीं होना चाहिए। गीत की शक्ति उसकी दृष्टि की व्यंजना में है। नवगीत भी सामाजिक विषमता की बात करता है, लेकिन यह सब संकेतों और व्यंजनाओं में अधिक कहा गया है। व्यवस्था विरोध अनेक नवगीतों में है लेकिन वह बहुत मुखर न होकर, प्रतीकों और संकेतों से व्यक्त होता है। डॉ० गिर्राज सिंह ने रामदरश मिश्र के गीत 'उड़ो बगुलों उड़ो' को

आधार बनाकर दर्शाया है कि इसमें किस तरह स्वेच्छाचारी और जनसाधारण का शोषण करने वाले धवलवसन तत्वों की शिनाख्त की गई है। डॉ० मृत्युंजय उपाध्याय का नवगीत की परिवर्तन व्यंजना के बारे में दृष्टिकोण–

'नवगीत सामाजिक पलायन का काव्य नहीं, उसके विरूद्ध लड़ने को प्रतिबद्ध है। यह व्यवस्था की हर विसंगति, उससे जूझती भीड़ का हमदर्द होना है। उससे उत्पन्न दायित्व का निष्ठापूर्वक पालन भी करना है।'[6] नवगीत के आलोचकों ने गीतमात्र का आधार लय और छन्द को माना है। जो लोग छन्द को बहुत जरूरी नहीं मानते वे लय को महत्व देते हैं। नवगीतकारों ने लय के नये–नये प्रयोग किये हैं। डॉ० वीरेन्द्र आस्तिक ने सही लिखा है–

'नवगीत के रूपाकारों में जो परिवर्तन लक्षित हो रहा है वह भी लय के नये–नये प्रयोगों के ही कारण है।'[7]

इसमें संदेह नहीं कि लय के अभाव में नवगीत गद्य का टुकड़ा बनकर रह जाता है। अतः नवगीत की परख करते समय गीतकार द्वारा लय के निर्वाह और लय के प्रति गीतकार के दृष्टिकोण का अनुशीलन आवश्यक होता है।

नवगीतकारों की आस्था सकारात्मक परिवर्तन के प्रभावशाली सन्देश सम्प्रेषण में दिखाई देती है। शिल्प की कोरी चमत्कारिता में नहीं। सहजता और स्वाभाविकता में उनकी सहानुभूति प्रस्फुटित हुई है। इसीलिए उसकी भाषा में भी अकृत्रिमता, लोक और जनजीवन के साथ गहरा जुड़ाव दिखाई देता है। डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने नवगीतों की भाषिक संरचना की विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए लिखा है–

'नवगीत की भाषिक नवीनता, ताजगी, सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता ही उसकी सर्वप्रमुख पहचान बन गई है। वह वक्तव्य, विवरण, विवेचन और दुरूह पहेली भाषा में नहीं बल्कि बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों की ध्वन्यात्मक भाषा है।'[8]

आंचलिक और लोकभाषा का प्रयोग नवगीत की अपनी विशिष्ट भंगिमा रही है। आंचलिकता प्रचलित मुहावरों की अक्षमता का बोध कराती है एवं रूपन्दित नये मुहावरों, प्रतीकों एवं मिथकों को ढूंढने की प्रतिक्रिया तेज होने का आश्वासन देती है।

भाषा की अभिव्यक्ति शक्ति को बढ़ाने के लिए नवगीतकारों ने आंचलिक और जनपदीय बोलियों के शब्दों, मुहावरों को बड़ी स्वाभाविकता के साथ ग्रहण किया है। नवगीतों में एक विषय को लेकर विविध रूपों में भाषा अभिव्यक्ति मिलती है। विषय का चुनाव जीवन, जगत, प्रकृति और समाज से किया जाता है। भाषा की सार्थक सजावट को बनाये रखने के लिए नवगीत में एक ओर छायावादी भावबोध और शिल्प का निषेध है, दूसरी ओर नयी कविता की कथित महानगरीय आधुनिकता के प्रति वितृष्णा का भाव भी है। डॉ० नन्द किशोर नवल के नागार्जुन के सम्बन्ध में लिखा है–

'नागार्जुन के पास पूरी विरासत थी, इसलिए इच्छानुसार उन्होंने जब जिस रूप को चाहा, उसे अपनाकर गीत लिखे, लेकिन गतानुतिकता का परिचय उन्होंने कभी नहीं दिया। गीत को उन्होंने जो रूप दिया हो, अपने स्पर्श से उसे कमोवेश नवीनता जरूर प्रदान की।'[9]

यही बात नवगीत के लिए कही जा सकती है। पूरी गीत परम्परा को आत्मसात करने के साथ–साथ नवगीतकारों ने अनेक कथन भंगिमाओं का उपयोग किया है। विद्वान आलोचकों ने लोक जीवन की कथन–पद्धतियों पर आधारित नवगीतों को विशेष रूप से सराहा है।

आज जब नवगीत समकालीन सर्जना का एक महत्वपूर्ण अध्याय बन चुका है तब इसे गम्भीरता से परखने की आवश्यकता और बढ़ गई है। बहुत कम आलोचक ऐसे हैं जिन्होंने नवगीत को गम्भीरता से लिया है और उसके मूल्यांकन के प्रतिमान सुनिश्चित किये हैं। डॉ० वीरेन्द्र आस्तिक, डॉ० सुरेश गौतम, डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी, डॉ० वीरेन्द्र सिंह, प्रो० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' आदि कुछ आलोचकों ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किये हैं कि नवगीत को युगीन परिवेश और समकालीन सर्जना के संदर्भ में पढ़ा जाये और परखा जाये, इसकी सम्प्रेशण शक्ति का विशेष रूप से अध्ययन आवश्यक है।

**सन्दर्भ–**

1. नया काव्य नये मूल्य, पृ०सं०–318
2. हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता, पृ०सं०–72
3. कविता की लोकधर्मिता, पृ०सं०–19
4. हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता, पृ०सं०–52
5. हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता, पृ०सं०–160
6. हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता, पृ०सं०–59
7. धार पर हम (दो), पृ०सं०–44
8. हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता, पृ०सं०–87
9. शताब्दी की कविता, पृ०सं०–145